International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 84-86

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 84-86
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-11-2014
Accepted: 30-12-2014

डॉ. अनीता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अनीता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भर्तृहरि के अनुसार क्रिया में साध्यरूपता

डॉ. अनीता शर्मा

प्रस्तावना

'साध्यत्व' क्या है? एवं क्रिया कैसे साध्यत्व से संयुक्त है? इसकी विस्तृत व्याख्या भर्तृहरि ने की है। जिसका प्रयोग करते समय दूसरी क्रिया की आकांक्षा उत्पन्न नहीं होती वह साध्य है। 'पचति' एवं 'खादति' कहने पर अन्य क्रिया की आकांक्षा नहीं होती, जैसे 'खादति' के साथ 'भवति', 'अस्ति', 'विधत्ते' आदि क्रियाओं की आकांक्षा नहीं होती।

उच्चारण करने के अनन्तर क्रियान्तर की आकांक्षा से युक्त, कारक के रूप में, क्रिया से अन्वित एवं कारकान्तर के साथ अन्वय से रहित की संज्ञा 'सिद्ध' है।[1] अर्थात् सिद्ध में क्रियान्तर की आवश्यकता होती है जैसे 'घट' के साथ 'अस्ति' क्रिया की आकांक्षा रहती है। कारकों का अन्वयन क्रिया के साथ होता है। घटः, रामः कहने पर कारक मात्र ही अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर पाता, उसका क्रिया से अन्वित होना आवश्यक है। कारक को कारकान्तर की आकांक्षा नहीं होती, जैसे 'घटः' को 'पटः' की आकांक्षा का न होना। अतः 'घट' को सिद्धत्व एवं 'पचति' को साध्यत्व से युक्त माना जा सकता है।

साध्यता के असत्वभूत भाव एवं सिद्धता को सत्वभूत भाव कहा गया है। इन्हीं दोनों के आधार पर आचार्यों ने नाम एवं आख्यात विभागों को जन्म दिया। सत्व अर्थात् सिद्धत्व को प्रकट करने वाले पद 'नाम' एवं असत्व अर्थात् साध्यत्व को प्रकट करने वाले 'आख्यात' कहलाए। निरुक्तकार ने भी भाव प्रधान को 'आख्यात' एवं सत्वप्रधान को नाम कहा है।[2]

क्रिया की आरोपित क्रमरूपता होती है। जबकि कार्य (साध्य) को अक्रम माना जाता है। इस स्थिति में तिङन्त वाच्य सक्रमा क्रिया की साध्यरूपता को स्वीकार करना कठिन हो जाता है। इसके समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि 'साध्यत्वेन प्रतीयमान क्रिया' ध ातु का वाच्य है, न कि साध्यभूत क्रिया। रज्जु में सर्प की प्रतीति की भांति ही अस्ति, भवति आदि तिङन्तों में क्रिया के साध्यरूपत्व की प्रतीति होती है।

साध्यावस्था की स्थिति में क्रिया को भर्तृहरि अद्रव्यभूत अथवा असत्त्वभूत मानते हैं। अतः असत्त्वभूत तिङन्त पदों से असत्त्वभूत क्रिया कही जाती है।

कुछ वैयाकरणों ने 'सत्ता' को क्रिया माना है। यहां सत्ता की साध्यरूपता विचारणीय है। सत्ता में क्षणभेद से क्रम दिखाई देता है। अतः प्रश्न यह उठता है कि सत्ता क्रिया जो कि अध्यासवशात् सक्रमा है, साध्यरूप कैसे होगी?

इसके समाधानार्थ भर्तृहरि ने जो तर्क दिया है वह व्याकरण दर्शन को अमूल्य देन है।

सत्कार्यवाद के अनुसार कारणों में रहने पर कार्य कारण रूप में 'सत्' है क्योंकि दण्ड, चक्र, मृत्तिकापिण्ड, सीवर एवं कुम्हार को देखकर 'घट' की सत्ता बुद्धि में रहती है। अतः तत्–तत् कार्य के तत्–तत् हेतुओं के कारण कार्य का ज्ञान बुद्धि में रहता है। बुद्धि में स्थिति धारण करने वाला कारण कर्त्ता के व्यापार करने पर बाहरी रूप को धरण कर लेता है।

कारण जब तक बाह्य कार्य के रूप में सत्ता को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उन–उन बीच के क्षणों में 'कारण' के स्वरूप के कारण साध्यावस्था रूप होता हुआ 'सत्' कहलाता है।[3]

जिस अवस्था में व्यापारों का होना विद्यमान रहता है उसे पूर्वावस्था कहा जा सकता है। पूर्वावस्था अर्थात् व्यापृत कारणावस्था कर्ता के व्यापार से युक्त होती है। जिस अवस्था में व्यापारों की समाप्ति हो जाती है, उसको 'कार्यावस्था' अथवा 'उत्तरावस्था' का नाम दिया जा सकता है। इन दोनों अवस्थाओं में पूर्वावस्था ही 'तिङन्त' का बोधक है, उत्तरावस्था नहीं। उत्तरावस्था सिद्ध रूप है, जो प्रातिपादिकों का ज्ञापक है।[4]

वस्तु के कार्य रूप में सिद्ध होने पर कारण के समस्त व्यापार कर्त्रार्थ हो जाते हैं। इसलिए कारण की आकांक्षा की समाप्ति हो जाने पर, साध्य रूप क्रिया के वाचक तिङन्त का प्रयोग उस सिद्ध अर्थ में

नहीं होता वरन् वहां सिद्ध अर्थ के वाचक प्रातिपादिक का प्रयोग होता है।5 क्रिया की साध्यत्वसिद्धि हेतु भर्तृहरि ने चार शंकाएं उपस्थापित की हैं व उनका समाधान प्रस्तुत करते हुए क्रिया के साध्यस्वरूपत्व का वर्णन किया है।

पहली शंका– आख्यात से प्रधान रूप में क्रिया कही जाने पर क्रिया संख्या शून्य होगी क्योंकि संख्या 'द्रव्य' में रहती है जबकि क्रिया को 'अद्रव्य' माना गया है। यदि कहें कि क्रिया संख्या शून्य है तो उस में कृत्वसुच् प्रत्यय होकर 'पञ्चकृत्वः पचति' या सुच् प्रत्यय होकर 'द्विः पचतिः' कैसे कहा जाएगा? यहां क्रिया में स्पष्ट रूप में संख्या दृष्टिगोचर हो रही है, जो कि क्रिया के 'अद्रव्यत्व' के कारण नहीं होनी चाहिए।

दूसरी शंका– कृदन्त से सिद्ध क्रिया का मान होता है। अतः यहां संख्या के योग में अनुपपत्ति नहीं है। यदि पाकादि में साध्य क्रिया योग माना जाए तो तिघन्त व क्रिया में क्या भेद रह जाएगा?6

तीसरी शंका– सिद्ध को सिद्ध की आकांक्षा नहीं होती। यदि सिद्ध क्रिया का विधान होता है तो साधन (सिद्ध) से उसका अन्वय कैसे होगा? कारक योग वाली क्रिया का निबन्धन आख्यात है– यदि ऐसा कहें तो षष्ठी का सम्बन्ध लकार से होने पर कर्ता, कर्म की षष्ठी का क्रियायोग खण्डित है।[7]

चौथी शंका– 'पाक' शब्द से साध्य क्रिया कही जाती है और सिद्ध क्रिया भी। एक वाचक शब्द में एक साथ दो धर्म कैसे हो सकते हैं? अतः 'पाक' से बोधित क्रिया एक ही साथ साध्य भी हो और सिद्ध भी यह कैसे संभव है? यदि 'पाक' साध्य है तो उसमें सिद्धत्व कैसे और यदि सिद्ध है तो साध्यत्व कैसे?[8]

समाधान

पहली शंका के समाधान के लिए कहा गया है कि क्रिया संख्या रहित है। किन्तु अब क्रिया पुनः पुनः दोहराई जाती है तो आवृति की गणना करके कृत्वसुच् प्रत्यय होकर 'पञ्चकृत्वः पचति आदि रूप बनते हैं। संख्येय को लेकर क्रिया में भी संख्या पाई जाती है।9

'पाकः' के साध्यत्व एवं सिद्धत्व के विषय में भर्तृहरि कहते हैं कि एक वाक्य में–'इतना भाग कारक है' एवं 'इतना भाग क्रिया' ऐसा–विभाग केवल शास्त्र में ही कल्पित है। परमार्थतः लोक में वाक्य का विभाग नहीं।10 पद में भी परमार्थतः प्रकृति–प्रत्यय विभाग नहीं है किन्तु शास्त्र में उसके भी विभाग का उल्लेख मिलता है। 'पाकः' में भी शास्त्रोक्त प्रकृति एवं प्रत्यय भिन्न–भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु अब हम सामान्य रूप से व्यवहार करते समय 'पाकः' कहते हैं तो यह विभाग मस्तिष्क में नहीं रखते कि 'यह प्रकृति है' एवं 'यह प्रत्यय है'। 'पश्य मृगो धावति' वाक्य में तिङन्त क्रियाओं की क्रमशः साध्य और साधनावस्थाएं शास्त्र में जिस प्रकार कल्पित कर ली गई हैं उसी प्रकार प्रत्ययों के साथ 'पाकः' में भी क्रमशः साध्य एवं सिद्धावस्थाओं की कल्पना कर लेनी चाहिए।[11]

कुछ वैयाकरणों ने 'पश्य मृगो धावति' को एक वाक्य माना है। इस वाक्य में 'पश्य' एवं 'धावति' दो क्रियापद– दृष्टिगोचर हो रहे हैं। 'पश्य' व 'धावति' को 'मुख्य क्रिया' एवं 'गौण क्रिया' मानें तो गौण क्रिया मुख्य क्रिया से कारकत्वेन अन्वित होगी, उसे साधनावस्था में स्वीकार किया जाएगा एवं जिस क्रिया से वह अन्वित होगी उसे साध्यावस्था में स्वीकार किया जाएगा।

साध्यावस्था में तो क्रिया क्रियान्तर की आकांक्षा से रहित होगी जबकि साधनावस्था में क्रिया कारक से अन्वित होगी। 'पश्य मृगो धावति' में 'पश्य' क्रिया साधनावस्था एवं 'धावति' क्रिया साध्यावस्थायुक्त है क्योंकि 'पश्य मृगो धावति' में मृग के कर्म धावन से सम्बद्ध

धावति क्रिया 'पश्य' का कर्म बनकर उसमें अन्वित हो गई है।12 'पाकः' भी सिद्ध एवं साध्य दो क्रियाओं से युक्त है। यहां साध्यत्वेन प्रतीत क्रिया को मूल धातु एवं सिद्धत्वेन प्रतीत होने वाली क्रिया को घञादि प्रत्ययों के द्वारा समझना चाहिए।[13]

चौथी शंका में कहा गया था कि एक पद दो अर्थों का वाचक कैसे हो सकता है? ऊपर 'पाकः' को साध्य एवं सिद्ध दोनों का वाचक सिद्ध किया जा चुका है। इस समस्या के समाधानार्थ भर्तृहरि कहते हैं कि 'पाकः' के भिन्न वाचक पद होने से आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'बन्धुता में 'तल्' प्रत्यय दो अर्थों में होता है– एक 'भाव' के अर्थ में एक 'समूह' के अर्थों में। इन दोनों के अन्वयन से दो विरोधी अर्थों का ज्ञान 'बन्धुता' शब्द से होता है–

1. बन्धूनाम् भावः इति बन्धुता एवं
2. बन्धूनाम् समूहः इति बन्धुता।

जिस प्रकार 'तल्' के कारण दो विरोधी अर्थों को बन्धुता में स्वीकार कर लिया गया है उसी प्रकार 'पाकः' में भी सिद्ध एवं साध्य अर्थ को स्वीकारना चाहिए।[14]

पाणिनि ने षष्ठी 'का योग मात्र' कृत् प्रत्यय से ही बताया है अन्य किसी प्रत्यय से नहीं।[15] इस स्थिति में साध्यावस्थापन्न भवति आदि अध्याहृत क्रियाओं के साथ 'तण्डुल' का योग मानने पर षष्ठी उत्पन्न नहीं हो पाएगी। षष्ठी की आपत्ति मूल साध्यावस्था वाली क्रिया के बिना नहीं हो सकती इसलिए ऐसे स्थलों पर मूलधातु द्वारा साध्यावस्थापन्न क्रिया की प्रतीति आवश्यक है।16 यह 'पाकः' में भी समझना चाहिए। 'पाकः' में स्थित प्रत्यय धातु से भिन्न भी है एवं अभिन्न भी जैसे कि वन में वृक्ष। वृक्ष यद्यपि वन से भिन्न है किन्तु उन्हीं को समुदाय रूप में वन कह दिया जाता है।

संदर्भ सूची

1. सिद्धत्वम्–क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकताकवैजात्यवत्वे सति कारकत्वेन क्रियान्वयित्वे सति कारकान्तरान्वयायोग्यत्वम्।। परमलघुमञ्जूषा, (थात्वर्थनिरूपणम्) पृष्ठ 27
2. निरुक्त 1.1
3. सत्सु प्रत्ययरूपोऽसौ भावो यावन्न जायते।
   तावत् परेषां रूपेण साध्यः सन्नभिधीयते।। वाक्यपदीय 3.8.16
4. तत्र व्यापृतं व्यापारावसाने सत्तां समासाद्यास्तीति पूर्वव्यापाराध्यारोपेणाभिधीयते। वाक्यपदीय 3.8.16 पर हेलाराज टीका, पृष्ठ 17
5. (अ) सिद्धे तु साधनाकाङ्क्षा कृतार्थत्वान्निवर्तते।
   न क्रियावाचिनां तस्मात् प्रयोगस्तत्र विद्यते।। वाक्यपदीय 3.8.17
   (आ) साध्यत्वात्तत्र चाख्यातैर्व्यापाराः सिद्धसाधनाः।
   धान्येनाभिधीयन्ते फलेनापि प्रवर्तिताः।। वाक्यपदीय 3.8.40
6. सिद्धस्यार्थस्य पाकादेः कथं साधनयोगिता। साध्यत्वे वा तिङन्तेन कृतां भेदो न कश्चन।। वाक्यपदीय 3.8.42
7. (अ) तत्र कारकयोगाया यद्याख्यातनिबन्धनम्।
   षष्ठ्याः सा लेन सम्बन्धे व्युदस्ता कर्तृकर्मणोः। वाक्यपदीय 3.8.43
   (आ) न लोकाव्ययनिष्ठाखसलर्थतृनाम्। अष्टाध्यायी 2.3.69
8. एकाभिधान एकोऽर्थो युगपच्च द्विधर्मभाक्।
   न सम्भवति सिद्धत्वे स साध्यः स्यात् कथं पुनः।। वाक्यपदीय 3.8.45
9. निस्सङ्ख्या संस्था एकापि क्रिया यदा आवर्तते तदा आवृत्तिनिबन्धनं भेदं स्वतश्चाभेदमुपादाय भेदाभेदयोगेऽस्याः संख्या दृश्यन्ते। वाक्यपदीय 3.8.41 पर हेलाराज टीका
10. एतावत् साधनं साध्यमेतावदिति
    कल्पना। शास्त्र एवं न वाक्येऽस्ति विभागः परमार्थतः।। वाक्यपदीय 3.8.45
11. आख्यातशब्दे भागाभ्यां साध्यसाधनवर्तिता। प्रकल्पिता यथा शास्त्रे स घञ्ादिष्वपि क्रमः।। वाक्यपदीय 3.8.46
12. मृगो धावति पश्येति साध्यसाधनरूपता।
    तथा विषयभेदेन करणस्योपद्यते।। वाक्यपदीय 3.8.51
13. (अ) लकृत्यक्तखलर्थानां तथा व्ययकृतामपि।
    रूढिनिष्ठघञ्ादीनां धतुः साध्यस्य वाचकः।। वाक्यपदीय 3.8.52

(आ) साध्यत्वेन क्रिया तत्र धातुरूपनिबन्धना।
सत्त्वभावस्तु यस्तस्याः स घञ्ादिनिबन्धनः।। वाक्यपदीय 3.8.47
14. बन्धुता भेदरूपेण बन्धुशब्दे व्यवस्थिता।
समूहो बन्ध्ववस्था तु प्रत्ययेनाभिधीयते।। वाक्यपदीय 3.8.48
15. 'कर्तृकर्मणोः कृति। अष्टाध्यायी 2.3.65
16. वनं वृक्षा इति यथा भेदाभेव्यपाश्रयात्। अर्थात्मा भिद्यते भावे स बाह्याभ्यन्तरे क्रमः।। वाक्यपदीय 3.8.58
17. काशिका, आर्येन्द्र शर्मा, संस्कृत परिषद् ग्रन्थावली–17, हैदराबाद, 1969.
18. महाभाष्य, श्रीकाशी संस्कृत ग्रन्थमाला–153, वाराणसी 1984
19. परमलघुमञ्जूषा, कालिकाप्रसाद शुक्ल, बड़ौदा, 1961.
20. वाक्यपदीय, अभ्यंकर एवं लिमये, पूना, 1965.
21. वाक्यपदीय प्रकाश व अम्बाकत्री टीका सहित, रघुनाथ शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1979.
22. वैयाकरणभूषणसार, प्रभाकर मिश्र, वाराणसी, 1982.
23. संस्कृत व्याकरण दर्शन, रामसुरेश त्रिपाठी, दिल्ली, 1972.
24. व्याकरण की दार्शनिक भूमिका, सत्यका वर्मा, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1971.